IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 4.819
Volume 11, Issue 1, November 2019

अथर्ववेद में प्राकृतिक चिकित्सा

डॉ. कीर्ति शुक्ला

असिस्टेंट प्रोफेसर- संस्कृत

राजकीय महाविद्यालय, मानिकपुर, जनपद- चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)

वैदिक युगीन व्यक्ति स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते थे। उनका भेषज विज्ञान भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। स्वयं अथर्ववेद से ही ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में सैकड़ों वैद्य थे तथा हजारों प्रकार की औषधियाँ प्रयोग में लायी जाती थीं।[1] इसलिए, इस वेद का नामकरण 'भेषजवेद' के रूप में भी हुआ है।[2] यद्यपि 'शतपथ-ब्राह्मण' में ब्राह्मणों को भिषक कर्म वर्जित है।[3] परंतु अथर्ववेद से ऐसा प्रतीत होता है कि इस वेद के प्रमुख ऋषिगण इस कार्य को अपना प्रमुख व्यवसाय मानकर निरन्तर इस क्षेत्र में नवीन अन्वेषण करने में संलग्न थे। इस बात की पुष्टि स्वतः इस वेद के प्रधान ऋषि 'अथर्वा' एवं 'अंगिरस' के नाम से उल्लिखित औषधियों से हो जाती है।[4] इसकी पुष्टि इसी वेद के 'गोपथ-ब्राह्मण' और 'कौशिक-सूत्र' से भी हो जाती है, जहाँ अंगिरस द्वारा मन्त्रविधि से तथा अथर्वा द्वारा रसौषधियों से उपचार वर्णित हैं।[5] अतः ऐसा प्रतीत होता है कि ये दोनों ऋषिकुल अथर्ववेद-कालीन उपचार की दो विधियों के प्रतिनिधि थे। इन साक्ष्यों से स्पष्ट है कि अथर्ववेद का प्रारम्भिक विषय अधिकांशतः आयुर्वेद रहा होगा। सम्भवतः इसी कारण से परवर्ती वैदिक ग्रन्थों में भी चिकित्साशास्त्र के क्षेत्र में अथर्ववेद की महत्ता स्वीकार की गई है।[6]

आयुर्वेद विषयक ग्रंथों की भी यही मान्यता है। 'सुश्रुतसंहिता' तो आयुर्वेद को अथर्ववेद का अंग मानती है तथा 'कश्यपसंहिता' आयुर्वेद की उत्पत्ति इसी वेद से स्वीकार करती है। चरक ने तो चिकित्सकों के लिए इस के अध्ययन की आवश्यकता पर बल देते हुए उसे हवन, नियम, प्रायश्चित, उपवास, मन्त्रादि द्वारा चिकित्सा का विधान करने वाला माना है। इस प्रकार स्वयं अथर्ववेद एवं तत्सम्बन्धी ग्रंथों तथा परवर्ती अन्य ग्रंथों में इस

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 4.819
Volume 11, Issue 1, November 2019

वेद से सम्बद्ध भेषजविषयक उल्लेखों से यह निश्चित हो जाता है कि अथर्ववेद का घनिष्ठ सम्बन्ध वैद्यक विद्या से रहा है।

प्रकृति मानव-जीवन के लिए वरदान है। इसके सभी तत्त्व—पृथ्वी, जल, अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्र आदि किसी न किसी रूप में प्राणी-जीवन के लिए परमोपयोगी हैं। प्रकृति के साहचर्य में रहने के कारण वैदिक ऋषि प्राकृतिक तत्त्वों में विद्यमान रोगनाशक-शक्ति से भलीभाँति परिचित थे। वे इसी से रोगादि का उपचार मन्त्र विद्या, मन्त्रसिद्ध-मणियों आदि के साथ-साथ प्रायः सुलभ प्राकृतिक साधनों से किया करते थे। वे विभिन्न रोगों का उपचार या तो वनस्पतिक औषधियों से करते थे अथवा सूर्य, जल आदि प्राकृतिक तत्त्वों से किया करते थे। अथर्ववेद का साक्षात् सम्बन्ध आयुर्वेद से होने के कारण आथर्वणिक ऋषियों ने भी रोगों के निवारण के लिए अनेक प्रकार की चिकित्सा प्रणालियों को अपनाया। उनमें प्राकृतिक चिकित्सा सर्वाधिक सुलभ रही है। 'अथर्ववेद' में उपलब्ध साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन जन इस चिकित्सा-पद्धति के अन्तर्गत जल, सूर्य-रश्मि, वायु-प्राणायाम, मिट्टी, चन्द्रकिरण और यज्ञादि द्वारा मानव-जीवन उपचार को सुगम बनाते थे, शरीर को स्वस्थ रखते थे तथा अनेक रोगों का उपचार भी किया करते थे। 'अथर्ववेद' में इन प्राकृतिक साधनों द्वारा चिकित्सा का अनेकत्र उल्लेख प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है—

जल-चिकित्सा :

'ऋग्वेद' और 'अथर्ववेद' में जल चिकित्सा को एक महत्वपूर्ण चिकित्सा-प्रणाली के रूप में देखा जा सकता है। जल के अधिष्ठाता होने के कारण इन्द्र और वरुण देवों को जल-चिकित्सा का आविष्कारक माना गया है। इसलिए ऋग्वेद को प्रथम दिव्य-भिषक तथा जल-चिकित्सा कहा गया है और वरुण को वैद्यों का स्वामी एवं चिकित्सक। अथर्ववेद के अनुसार जल सभी प्रकार के रोगों को नष्ट कर सकता है, यहाँ तक कि वंश-परम्परा (अर्थात वंशानुगत) से प्राप्त रोग भी समाप्त किये जा सकते हैं। 'ऋग्वेद' में भी एक उल्लेख प्राप्त होता है कि जल में सभी औषधियों का गुण विद्यमान है, अतः इससे सभी रोगों की चिकित्सा हो सकती है। यही नहीं, जल में अमृत और औषधीय गुण माना गया है तथा यह भी कहा है कि यह शरीर को शक्ति देता है, रोगनाशक है और

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 4.819
Volume 11, Issue 1, November 2019

सोम आदि रसों के साथ सेवन करने पर दीर्घायु प्रदान करता है। अथर्ववेद में जल को सर्वोत्तम वैद्य बताते हुए ऐसा विश्वास व्यक्त किया गया है कि यह आँख और पैर आदि के सर्वविध दर्दों को दूर कर सकता है। इस मान्यता के कारण अथर्ववेदीय ऋषियों ने जल के अनेक गुणों का उल्लेख किया है। तदनुसार जल हृदय के रोगों को दूर करने वाला, बलवर्धक, रसप्रदाता और सौन्दर्यवर्धक एवं रोगनाशक है। इसमें अमृत, सुखद्रव्य व सभी औषधियों का गुण विद्यमान है। इसलिए ऋषि अथर्वा ने जल को दिव्य औषधि माना है।

बहता हुआ जल शुद्ध और गुणकारी माना गया है। यह मनुष्य को शक्ति और गति देता है, अतः कर्तृत्व के लिए जल का सेवन आवश्यक है। यही नहीं, वर्षा का जल उत्तम और अमृततुल्य है। इससे सभी रोग दूर किये जा सकते हैं और दीर्घायु की प्राप्ति होती है। अथर्ववेद के अनुसार वैद्य के लिए जल अधिक उपयोगी बताया गया है। गहराई से निकला हुआ जल अत्युत्तम होने के कारण सर्वोत्तम चिकित्सा का साधन माना गया है। ऋषि अथर्वा के एक मन्त्र में अंग-अंग में व्याप्त क्षयरोग (यक्ष्मा) दूर करने का उल्लेख है। एकत्र जल-चिकित्सा को अपभेषज अर्थात शीघ्र लाभकारी दवा माना गया है। ऋषि शान्तति का मत है कि इस चिकित्सा से चोट, घाव, वाणों के बड़े-बड़े घावों का भी उपचार किया जा सकता है। उनके अनुसार व्रण आदि को जल (गोमूत्र-मिश्रित) से अच्छी प्रकार धोकर उसके समीपस्थ भाग को भी भलीभाँति प्रक्षालित कर उस जल के लेप करने से घाव आदि शीघ्र ठीक हो जाते हैं। यह जल सम्भवतः गोमूत्र मिश्रित जल है, जो आयुर्वेद में फोड़े-फुंसी आदि रोगों की महाऔषधि माना गया है तथा जिसके नियमित सेवन से कुष्ठ आदि घाव भी ठीक हो जाते हैं। जल को पूर्ण औषधि स्वीकार किया गया है। यह सभी रोगों को दूर करके शरीर को नीरोग, स्वस्थ, शान्त और सुखी बनाता है। जल सब के लिए कल्याणकारक एवं शक्तिवर्धक व पौष्टिक होने के कारण 'घृत' माना गया है, क्योंकि यह अग्नि और सोम को धारण करने के कारण पौष्टिक है और मधुररसयुक्त तत्त्वों से प्राण एवं बल प्रदान करने वाला है। ऋषि कश्यप के अनुसार 'वरुण' नामक देव जिसके तत्व पर है, उसी तत्व का जल विशेष उपयोगी होता है। इतना ही नहीं, जल पापों एवं पाप-भावनाओं को भी नष्ट करता है ,इस प्रकार जल संजीवनी शक्ति प्रदान करता है। इसके समुचित प्रयोग से मनुष्य सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर सकता है।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 4.819
Volume 11, Issue 1, November 2019

'अथर्ववेद' में जल-चिकित्सा की विधि भी संकेतित है। ऋषि अथर्वा ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि रोगग्रस्त अंग को जल में भिगोना चाहिए अथवा उसे शीतल रखना चाहिए। सम्भवतः 'अथर्ववेद' में संकेतित जल-चिकित्सा विधि को आधार मानकर आधुनिक युग में स्नान-प्रकार, पाद-स्नान, अर्ध-स्नान, सहस्रधारा-स्नान, घुटनों पर धारापात, उद्यान, तैरना आदि विधियों से शरीर के नाना रोगों को दूर करने हेतु उपचार किया जाता है। इस प्रकार इस चिकित्सा से चर्मरोग, उदररोग, प्रमेह, ज्वरताप आदि अनेक रोगों का उपचार किया जाता है। भारतीय आयुर्वेद की यह मान्यता है कि शरीर में किसी भी प्रकार के विकार का मूल कारण उदर-विकार है। इसलिए वैद्य प्रातःकाल निर्जलपान (खाली पेट) यथाशक्ति जल पीने का नियम बताते हैं। इससे उदर-विकार की सम्भावना नहीं रहती तथा शरीर स्वस्थ रहता है। वस्तुतः जल में अग्नि और सोम (शीत) दोनों तत्त्व होने के कारण यह प्राणशक्ति और तेजस्विता प्रदान करता है। इसलिए अजीर्ण (भोजन न पचने पर) होने पर अधिक जल पीने का विधान है। इस प्रकार जल में शक्ति व दिव्य गुण होने से यह तेज प्रदान करता है। शीतल जल से नित्य स्नान से शरीर नीरोग रहता है तथा इसमें स्फूर्ति व शक्ति का संचार होता है। अतः जलीय चिकित्सा एक अद्भुत चिकित्सा-पद्धति है जिसका सूत्रपात वैदिक ऋषियों ने किया था, जो आयुर्वेद में आज भी यथावत प्रयोग की जा रही है।[7]

वायु व प्राणायाम-चिकित्सा :

मानव जीवन का आधार प्राण-वायु है। जीवन की सभी क्रियाएँ एवं शरीर में शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह, ओजस्विता आदि प्राण की सत्ता पर निर्भर हैं। यदि प्राणशक्ति का संरक्षण, पोषण आदि सम्यक् ढंग से किया जाय तो शरीर को व्याधियों से मुक्त किया जा सकता है। क्योंकि शरीर के कोने-कोने में प्राण व्याप्त रहता है, अतः इसकी शक्ति के क्षीण होने पर शरीर में नाना व्याधियों का जन्म होता है। इसलिए प्राकृतिक-चिकित्सा में प्राणायाम-चिकित्सा का विशेष स्थान है। इस चिकित्सा के द्वारा शरीर में प्राण-शक्ति का विस्तार किया जाता है। इस प्राण का सम्बन्ध वायु से है। शरीर में प्राण क्रिया दो प्रकार से होती है। श्वास के माध्यम से प्राण वायु फेफड़ों में ग्रहण कर समस्त कोशिकाओं को शुद्ध वायु से युक्त करती है और निष्कासन क्रिया अर्थात अपान वायु फेफड़ों

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 4.819
Volume 11, Issue 1, November 2019

से दूषित तत्त्वों को बाहर निकालती है। प्राण और अपान की यह क्रिया यदि शरीर में सुव्यवस्थित रूप से चलती रहे तो शरीर स्वस्थ और नीरोग रहता है।

वेदों में प्राण-शक्ति की अत्यधिक महत्ता बतायी गई है। 'अथर्ववेद' में यह चराचर जगत् का स्वामी माना गया है और इसी में सब कुछ प्रतिष्ठित बताया गया है।[8] वैदिक ऋषि भली-भाँति यह जानते थे कि शरीर की नीरोगता प्राणों की सवलता पर निर्भर है तथा उसके दौर्बल्य से शरीर में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। उन्हें यह भी ज्ञात था कि प्राण (वायु) शरीर में प्रवेश करके शरीर को स्वच्छ करके बल का संचार करता है तथा अपान शरीर के दोषों को बाहर निकालता है। प्राण शरीर रूपी रथ का वहन करता है (अर्थात धारण करता है), इसलिए अथर्ववेदीय ऋषि ब्रह्मा और भार्गव वेदों ने इसे 'अनुदान' संज्ञा से अभिहित किया है। यही नहीं, भार्गव वेदों के मत में वर्तमान, भूत और भविष्य सभी कुछ प्राण पर निर्भर हैं। इसलिए उन्होंने प्राण को सर्वोत्तम भेषजतत्त्व माना है, क्योंकि यही जीवन-शक्ति प्रदान करता है। इससे स्पष्ट है कि प्राणायाम देह के अन्तर विद्यमान सभी दोषों को दूर करके शरीर को स्वस्थ रखता है। 'अथर्ववेद' के मन्त्रों में भी प्राणायाम वायु के सम्यक् क्रिया से सर्वविध रोगों को दूर करने एवं प्राण वायु द्वारा रोगनिवारक तत्त्वों को लाने और अपान द्वारा रोगकारकों को दूर ले जाने की प्रार्थना की गई है। अतः प्राणायाम क्रिया भी रोग निवारण का एक प्राकृतिक साधन माना गया है। 'मनुस्मृति' में तो प्राणायाम-चिकित्सा को धौंकनी से उपमित करते हुए सरलतापूर्वक यह समझाया गया है कि जिस प्रकार धौंकनी की सहायता से अग्नि प्रदीप्त करके स्वर्ण आदि धातुओं को शुद्ध किया जाता है, उसी प्रकार प्राणायाम द्वारा शरीर के सभी दोषों को नष्ट किया जाता है।[9]

प्राणायाम के लिए शुद्ध वायु का होना अत्यावश्यक है, क्योंकि इस क्रिया का मुख्य तत्त्व शुद्ध वायु है। अतः घर में शुद्ध वायु के अभाव में प्रवेश होने पर उसके सेवन एवं प्राणायाम के आधार और हृदय स्वस्थ रहता है जिससे शरीर पुष्ट और दीर्घायु होता है तथा सदा रोगों से मुक्त रहता है। इस पद्धति में प्राणवायु (वायस) को अन्दर तक कर उसे कुछ क्षणों के लिए अन्दर रोककर छोड़ा जाता है। योग की दृष्टि से इसे क्रमशः 'पूरक', 'कुम्भक' और 'रेचक' कहा जाता है। प्राणवायु को जितने अधिक समय तक अन्दर रोका जाएगा उतना ही अधिक रक्त शुद्ध

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 4.819
Volume 11, Issue 1, November 2019

होता है और इससे शरीर में अधिक शक्ति का संचार होता है तथा पाचन शक्ति ठीक रहती है और शरीर स्वस्थ रहता है। ऋषि-महर्षि इसी चिकित्सा से दीर्घायु होते थे। अतः रोगों से शरीर की सुरक्षा के लिए प्राणायाम-चिकित्सा अत्यन्त उपयोगी है।

अग्नि-चिकित्सा :

प्राकृतिक चिकित्सा में अग्नि की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। अग्नि के साक्षात सेवन, शरीर के अंगों को इससे सेकना, अग्नि से रोगनाशक औषधियाँ (जड़ी-बूटियाँ) डालकर रोगों के कीटाणुओं को नष्ट करना, निवास आदि स्थानों को अग्नि के ताप से गर्म करना आदि अनेक विधियों से अग्नि-चिकित्सा की जा सकती है। वैदिक मान्यता है कि अग्नि शीत की औषधि है।[8] इसका तात्पर्य है कि शीत और शीतजन्य रोगों में अग्नि-सेवन लाभकारी है। 'अथर्ववेद' में अग्नि को रोगोत्पादक कृमियों का नाशक माना गया है। तदनुसार अग्नि में गुग्गुल आदि के जलने से रोग नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि इसकी सुगन्ध रोग और रोगकारकों को नष्ट करती है। यही नहीं, अग्नि को तेज, वर्ण, ओजस, दीर्घायु, बल और यश का कारण भी माना गया है। यही अग्नि ऑक्सीजन के रूप में शरीर में प्राण शक्ति को उद्दीप्त करता है। इसी वेद में अन्यत्र सर्प का विष उतारने के लिए सर्प द्वारा काटे हुए अंग को गर्म लोहे आदि से जलाकर (दागने से) सर्प-विष नष्ट करने का उल्लेख प्राप्त होता है। वैदिक ऋषियों की ऐसी मान्यता है कि तैंतीस (३३) देवों की जो विशेषताएँ हैं, वे सभी अग्नि में हैं। इसका अभिप्राय यह है कि ऊर्जा के समस्त स्रोत अग्नि में विद्यमान हैं, अतः इससे जीवनी शक्ति प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार इन साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि अग्नि जीवन के लिए अनिवार्य ही नहीं, प्रत्युत चिकित्सा का भी उत्तम साधन है।

इस प्रकार 'अथर्ववेद' में उपलब्ध उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन जन रोगोपशमनार्थ प्राकृतिक-चिकित्सा पर निर्भर करते थे। वे प्राकृतिक सुलभ साधनों से अनेक रोगों का उपचार किया करते थे और स्वस्थ-जीवन जीते थे। 'अथर्ववेद' में संकेतित इस चिकित्सा प्रणाली से अनेक आधुनिक चिकित्सा-

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 4.819
Volume 11, Issue 1, November 2019

पद्धतियाँ भी विकसित हुई हैं, जिनका आज बहुत प्रचार-प्रसार हो रहा है। यह चिकित्सा-पद्धति एक सस्ती, सुलभ, सर्वथा दोषरहित तथा सर्वाधिक उपयोगी चिकित्सा-प्रणाली मानी जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. अथर्व० २.३.३ : शतं ह्यस्य भेषजं : सहस्रं वीरुधः।

2. वही, ६.६.१४ : स्रुचः सामानि भेषजा.....यजूंषि होत्रा अमृतम्.....।

3. शत० १०.५.४.६ : ब्राह्मणेन भेषजं न कार्यम्.....।

4. अथर्व० ११.२.१४ : अथर्वाणिरस्सि देवभिषगुत्त। औषधान्यायुभ्यां त्वं प्राण जिन्वसि॥

5. गोपथ० १.३.४ : भूयिष्ठं ब्रह्म यद् यज्ञिरसः। यद्रिरस यज्ञिरसः। संसारः वेदार्थज्ञः वेदभागस्तद् भेषजम्।।

एवम् कौशिक सू० २६.२ : ....अथर्वाणि शान्ताः.....।

6. पंचविश ब्राह्मण- 10.7.20

7. अथर्व० 4-7-1

8. अथर्व० – 8.2.3

9. मनुस्मृति – 6.71

10. यजुर्वेद 23.10